मनुष्य बनो

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की २२ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २५.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४३	जनवरी–८४	अङ्क—४

प्रेम धारा से :

शब्द

कोई नहीं बनता किसी का भाई, घड़ी बुरी जब आती है।
आंखों में जो शरम कभी थी, वह भी दूर हो जाती है॥

जिनको अपना कह कह करके, अपना आप गंवाया था।
वह भी अपने बने न हरगिज, श्रुति यह समझाती है॥

जिनकी खातिर धर्म कर्म सब, छोड़ के पास कमाये थे।
वह भी दुःख में छोड़ गये सब, दुनियां दोष लगाती है॥

अपना पेट काटके हमने, जिनके पेट को पाला था।
उनकी बुद्धि उल्टी ऐसी, हम पर छुरी चलाती है॥

अपनी नींद हराम करी थी, जिनको खूब सुलाया था।
हम अब सारी रात तड़पते, उनको नींद अब आती है॥

ऋषियों-मुनियों, सन्तों ने, समझाया हमने सुनी न थी।
अब आयी है होश हमें जब, जान बड़ी घबराती है॥

अब भी जो कोई सबक न सीखे, वेद, ग्रंथ करे फिर क्या।
वक्त नाश का आये, 'गाफिल' बुद्धि मारी जाती है॥

यमदग्नि ऋषि की कथा

अन्तिम कथा के पश्चात ऋषियों में एक प्रकार का सन्नाटा आ गया। सब थोड़ी देर के लिये चुप हो गये और कथा के गूढ़ आशय पर सोचने लगे। कश्यप ऋषि ने कहा, सोचने के लिये फिर (शिवव्रत लाल जी महाराज) समय मिलेगा। अच्छा है अब महाराज यमदग्नि जी अपनी कथा सुनावें।

यमदग्नि जी बोले :

ऋषियों! अब तक जो कथायें हुई हैं चाहे विषयों की दृष्टि से उनको आप कुछ कहलो, किंतु वास्तव में सबका आशय एक है। आप मुझसे कहते हो कि अपनी कथा सुनाओ मैं अपनी कथा क्या सुनाऊँ? मेरे जीवन की घटनायें अति दर्द भरी व आँसू बहाने वाली हैं। आप उनको सुनकर दुखी होंगे। बुद्धिमानों का बचन है कि जब तक हो सके किसी को अपने दुःख से दुःखी न करो। हर व्यक्ति तत्परता और धैर्य के साथ अपना बोझ आप उठावे। जो सर पर आन पड़े उसको सहन करे। दुनियाँ में सबको किसी न किसी प्रकार का दुःख है। लोग अपने ही दुःखों से छुटकारा नहीं पाते। दूसरों की आपत्तियों को सुनने की उनको परवा कब है। इसलिये भाईयों! मेरा तो सदा से यही नियम रहा

है। कि अगर कोई प्रसन्नता की बात है तो मैं उसमें तो हर एक को सम्मिलित कर लिया करता हूं। लेकिन दुःख के सम्बन्ध में न तो किसी को अपनी सहानुभूति करने देता हूँ न किसी को अपना दुःख सुनाकर व्यर्थ दुखी करता हूं।

औरों ने अपनी-अपनी बीती कह सुनाई। आप ने कहा कि अब तुम्हारी बारी है। मैं असमंजस में हूं कि क्या करूँ? क्या न करूँ। एक तो अपने दुःख और कष्ट के वृतांतों का ध्यान दूसरे आपकी आज्ञा का विचार। बहुत अच्छा! कोई चिन्ता नहीं। सुनिये आप लोगों की इच्छा ही ऐसी है तो फिर सुनिये, मगर कथा है दुःख प्रद।

नालये बुलबुले शैदा, तू सुना हंस हंसकर।
अब जिगर थाम कर, बैठो मेरी बारी आई॥

महात्माओं! मैं एक निरपराध तथा अहिंसक ऋषि हूँ। पूजा-पाठ, कर्म और यज्ञ हवन के अतिरिक्त मुझको कभी किसी और काम से सम्बन्ध नहीं था। आश्रम में अतिथि आया करते थे। आश्रम वाले का धर्म हो जाता है कि आने जाने वालों को लाभ पहुँचावें। यदि किसी का घर न होवे तो कोई क्यों किसी के पास आने-जाने का कष्ट उठावे। मैं भी इस नियम को कड़ाई से मानने वाला था और मेरी स्त्री रेनुका औ चार पुत्र मेरे विशु, और परशु, आदि इस कार्य में मेरी सहायता करते थे। मुझको इन्हीं विश्वामित्र जी की बहन ब्याही थी जो इस समय आपके सम्मुख यहां विराजमान हैं यह पहले से ही मेरे सम्बन्धी हैं और इसलिये इनके साथ मुझको सदा से एक प्रकार की विशेषता का हक प्राप्त है।

एक बार का प्रसँग है कि रेनुका ने बहुत दिनों से अपनी बहन को नहीं देखा था। उसकी एक बहन सूर्यवंशी राज।

सहस्रार्जुन को ब्याही थी। यह चक्रवर्ती राजा था। इस राजा में और उसकी सन्तान में यह बहुत बड़ी त्रुटि थी कि वह अपने शासन के घमन्ड में हर एक व्यक्ति को सताया करते थे। रेनुका ने मुझको कहा कि बहुत दिनों से मैंने अपनी बहन को नहीं देखा है। वह अनूप देश के राजा को ब्याही है। मैंने कहा तू इस विचार को अपने हृदय से निकाल दे। राजा व साधू में परस्पर सम्बन्ध ही क्या है, लेकिन बहन की बहन से कुछ ममता होती है। यह विचार उसके हृदय से दूर नहीं हुआ। अन्ततः उसकी अपनी मानसिक धारों के कारण से एक दिन सहस्रार्जुन अपनी सेना के साथ मेरे यहां आ ही गया मैंने यथाशक्ति उसकी सेवा की। मैं निर्धन साधू था। लेकिन वशिष्ठ की तरह मुझको भी कामधेनु गाय मिली हुई थी। यह किसी समय इन्द्र ने मुझको दे दी थी। मैंने इसी कामधेनु गाय की सहायता से क्षण भर में राजा के अथिति-सत्कार की सम्पूर्ण सामिग्री एकत्रित कर ली और आतिथ्य का कर्तव्य भली-भांति पालन किया।

जिस तरह विश्वामित्र ने वशिष्ठ से प्रश्न किया था वैसे ही आश्चर्य व अचम्भे के स्वर में सहस्रार्जुन ने भी मुझसे पूछा। जो उत्तर वशिष्ठ ने दिया था वही मैंने भी उसको दिया। विश्वामित्र की तरह उसके मुँह में पानी भर आया। मुझसे कहने लगा कि अपनी कामधेनु गाय किसी न किसी प्रकार मुझे दे दीजिये। इन क्षत्रियों की विचित्र अवस्था है। करना धरना कुछ भी नहीं, यों ही भुज बल से सब कुछ प्राप्त करना चाहते हैं। बहुत से स्थानों पर मनुष्य का बल नहीं चलता और कहीं चल भी गया तो उसका परिणाम हृदय विदारक होता है। तुमको वशिष्ठ ने बता दिया है

कामधेनु गाय क्या वस्तु होती है इसलिये मैं दोबारा उसको नहीं बतलाऊँगा। राजा ने कठोरता की। बलात् कामधेनु गाय को ले गया। यदि मैं चाहता तो कामधेनु गाय से राजा पर विजयी हो जाता। वह बेचारी बार-बार मेरी ओर देखती थी। मगर मैंने पहले ही बता दिया है कि मैं बिलकुल निरपराध साधू हूँ। मैंने उससे कुछ नही कहा। राजा उस को घसीटता ले गया। यह समाचार कहीं मेरे लड़के परशुराम को मिल गया। वह अपने आश्रम में तप कर रहा था। फरसा लेकर उठ खड़ा हुआ और धावा मारकर सहस्रार्जुन की राजधानी महेशपति नगरी में जा पहुँचा। क्षत्री को ललकारा। हत्यारे! यह तूने क्या किया। क्या कोई साधू को कभी दुःख देता है? तूने समझ लिया कि राजा के सम्मुख किसी को लड़ने की शक्ति नहीं है। यह तेरा विचार अनुचित है। जिसमें ब्रह्मा का तेज है उसका सामना कौन कर सकता है? मेरा पिता सीधा सादा है उसने अथिति सत्कार का कर्तव्य पालन किया। उसका बदला यह दिया कि उस की कामधेनु गाय को बलात् छीन लिया। लुटेरे, डाकू तुम को संसार राजा कहे, मैं राजा नहीं कहता। अगर तू क्षत्री है तो आजा मुझसे लड़ाई कर। ऋषियों! परशुराम की ललकार को सुनकर सहस्रार्जुन और उसके लड़के सामने आये। वह अकेला था। राजा के पास बहुत कुछ सेना थी। उसे किञ्चित लड़ने की रुचि न होती किन्तु परशुराम ने उसको बुरी तरह से चैलेन्ज दिया था। क्षत्री ऐसे समय में पीठ नही दिखाते। यह क्षत्रियों का धर्म है कि मैदान से कभी न हटे। 'प्राण जाँय पर वचन न जाई'।

लड़ाई प्रारम्भ हुई। परशुराम ने राजा के बहुत से हाथ

काट दिये और १०० पुत्रों को मार डाला। नगर को आग लगा दी। और सबको दिखादिया कि ब्रह्म तेज राज तेज से अधिक बलवान है। वह कामधेनु को लेकर मेरे पास चला आया। मैंने उससे कहा बेटे! तूने सब कुछ अच्छा किया लेकिन चक्रवर्ती राजा को व्यर्थ मार दिया। राजा के मारने की आज्ञा शास्त्र नहीं देते। इसका बहुत बड़ा पाप होता है। तू मेरी आज्ञा मान ले। जा प्रायश्चित के निमित्त तीर्थ यात्रा कर जिससे यह कलंक दूर हो और पाप से छुटकारा मिले। परशुराम मेरा सबसे अधिक सुशील और आज्ञाकारी पुत्र है। मेरी आज्ञा को उसी समय मान लिया और तीर्थ यात्रा करने के विचार से उसी समय आश्रम से चला गया। यह मेरे जीवन की एक घटना है जो बहुत दर्द भरी है। मैंने जिस प्रकार अपनी विवशता तथा राजा की निराश्रयता को महसूस किया और इस परशुराम के काम पर जो दुःख हुआ उसका आपसे वर्णन नहीं कर सकता हूँ। आप समझिये कि अच्छे मनुष्यों से प्रायः ऐसे-ऐसे काम हो जाते हैं जो करने योग्य नहीं होते, किंतु कर्म का सिलसिला बहुत प्रबल है। कोई नहीं कह सकता कब क्या हो जायगा। इसलिये अब इसका वर्णन यहाँ ही छोड़ता हूं और अपने जीवन की दूसरी घटना सुनाता हूँ।

मैंने आपसे कदाचित यह नहीं कहा कि मेरा आश्रम ठीक गँगा के किनारे है। घड़ों में पानी नहीं था। मैंने रेनुका से कहा कि प्रिये! जल नहीं है। गंगा से भर लाओ। वह गई और जब जल भरने लगी तो संयोगवश उस समय चित्रकेतु गन्धर्व राजा अपनी स्त्री को लिये हुये क्रीड़ा कर रहा था। रेनुका गो सती व पतिव्रता स्त्री थी उसका मन चलायमान

हो गया। देर तक उनके तमाशे को देखती रही। घन्टों तक वहां ही खड़ी रही। अन्त में जब वह घड़ा लेकर वापस आई, मैंने पूछा—'इस देर का क्या कारण है?' वह चुप रही। जिव्हा तक न हिलाई। आखिर मैंने स्वयं ही समाहित चित्त होकर देखा। रेनुका के विचार आकाश मण्डल में फिर रहे थे। उनमें काम व इन्द्रिय भोग विलास के भाव के रंग थे। मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ। ऋषि पत्नी और इस प्रकार दूसरे स्त्री-पुरुष की क्रीड़ा के तमाशे को देखे। क्रोध आ गया और मैंने अपने लड़कों से कहा, 'इस स्त्री का सर अभी काट लो' दो लड़कों ने हाथ बांधकर प्रार्थना की, 'माता का मारना अधर्म है। पुत्र पर आचार्य का दस गुना, बाप का सौ गुना किंतु माता का हजार गुना अधिकार है। यह काम हमसे नहीं होगा। हम माँ पर कैसे हाथ उठायें? संसार हमको क्या कहेगा? आप स्वयं इस समय क्रोध में हैं थोड़ी देर पीछे जब क्रोध शान्त हो जायेगा। हमको स्वयं बुरा भला कहने लगेंगे। चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय हम अपनी माता को कभी न मारेंगे। ऐसा कभी न होगा। आप हमको मार डालें अथवा श्राप दें। किंतु हमसे यह न होगा कि माता जी का सर काट लें। रेनुका खड़ी हुई थर-थर कांप रही थी। उसी समय परशुराम तीर्थ यात्रा से वापस आया था। मैंने उसे बुलाकर कहा —'सचमुच तू ही आज्ञा कारी व शुशील पुत्र है। अपने फरसे को उठा। इन आज्ञाकारी लड़कों व मूर्ख स्त्री का सिर अभी काट दे'। सज्जनो! परशुराम ने तनिक भी देर नहीं की। उसी समय उसका फरसा आकाश में चमका और उसके भाई और माता के सिर भूमि पर गेंद की तरह लुढ़कने लगे। रक्त की नदी बह निकली। मैंने बेटे

की पीठ ठोंक दी। 'वाह ! वाह ! शाबाश ! क्या कहना है। मैं तेरे आज्ञा पालन से प्रसन्न हूँ। माँग माँग क्या माँगता है ? 'परशुराम ने हाथ जोड़ कर कहा' 'पिताजी ! आपमें संजीवनी शक्ति है, उसके प्रताप से माता व भाईयों को जीवित कर दीजिये। आपकी आज्ञा का पालन हो गया। इनको अपने अपराधों का दन्ड मिल चुका। जहाँ प्रकृति में चोरा लगाया जाता है, वहाँ मरहम भी दिया जाता है। जहाँ माली पेड़ों की टहनियों को काटता है साथ ही खाद भी डालता है। आप मेरी प्रार्थना को सुनें और इनको जीवित कर दें। मैंने कहा—एवमस्तु ! बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा और वह उसी समय जीवित हो गये। उस समय परशुराम की दशा कुछ न पूंछो। मां के पांव पर गिर गया और धाड़ें मार कर रोने लगा। भाईयों के साथ भी उसकी यही दशा थी।

माता से उसने कहा। लोग मातृ ऋण व पितृ ऋण से उत्तीर्ण होने का प्रयत्न करते हैं। और मैं ऐसा अभागा हूँ कि माँ और भाईयों के मारने का अपराधी बना। रेनुका ने प्रेम से परशुराम को अपनी छाती से लगा लिया। कहने लगी, पुत्र, इसमें तेरा तनिक भी अपराध नहीं हैं। ब्रह्मा ने जो कुछ लिख दिया हैं वैसा ही होता है। तूने पिता की आज्ञा मानी बहुत अच्छा किया। मैं भी तुझसे अति प्रसन्न हूँ। वह पुत्र, पुत्र नहीं है जो पिता की आज्ञा नहीं मानता। ऐ पुत्र ! ईश्वर को किसने देखा है ? संसार में बाप ही ईश्वर है जिसने तुझको जन्म दिया था। उसके वचन को सच्चा कर दिखाया। तू धन्य है जो इस प्रकार पिता की आज्ञा का पालन करता है। और मैं धन्य हूँ जिसके कोख से तेरे जैसा आज्ञाकारी पुत्र उत्पन्न हुआ। त कुछ चिंता न कर।

इस बात को बिलकुल भूल जा कि तूने अपनी माँ के मारने के लिये फरसा उठाया था। मैं तुझको सच्चे हृदय से आशीर्वाद देती हूँ कि संसार में तुझको यश मिलेगा।

महापुरुषों! मैं माँ बेटे की बात को सुनकर काँप उठा। इनकी बातचीत में शिक्षा थी और रोमाँच था। मगर मैं क्या करता जो होना था वह हो चुका था। इस तरह होना आवश्यक भी था। अन्त में मैंने सबको राजी किया और सबके खेद को दूर करना चाहा, मगर परसुराम ने कहा, 'मैं अपराधी हूं। मुझको माँ के मारने का पाप लगा है। मैं तीर्थ यात्रा को जाता हूँ। जब इसका प्रायश्चित हो लेगा तब आश्रम में वापस आऊँगा। बेचारा लड़का दूसरी बार तीर्थ यात्रा के लिये घर से निकला। यह मेरे जीवन की दूसरी शिक्षाप्रद घटना है। कहिये, यह दर्द भरी है या नहीं। अब तीसरी घटना सुनिये।

परशुराम के तीर्थ यात्रा की सूचना पाकर सहस्रार्जुन के बचे खुचे सौ लड़कों को बाप के खून का बदला लेने की चिंता उत्पन्न हुई। वह मुझे गाजर-मूली समझते थे। केवल परशुराम से डरते थे। मैदान खाली था। जी में प्रसन्न हुये। क्षत्री जाति में इस तरह बदला लेने का गुण स्वाभाविक है। वह निडर होकर आश्रम में चले आये। मैं हवन कर रहा था चारों ओर से चित्त वृत्ति हटी हुई थी। केवल मन्त्र पढ़ने और आहुति देने का ध्यान था। क्षत्रियों ने अकस्मात मुझ पर वार कर दिया और मेरा सिर कटकर गिर गया। सारा कमरा रक्त से भर गया और हवन कुण्ड की अग्नि बुझ गई। क्षत्री तो मुझको मार कर चले गये। रेनुका ने मेरी दशा देखी। विलाप करने लगी। उसके दुःख और व्याकुलता को देखकर पत्थर का हृदय भी पसीज गया।

उस समय उसने इक्कीस बार अपनी छाती पीटी। और इक्कीस बार परशुराम को याद किया। 'ऐ पुत्र ! तू आज यदि होता तो ऋषि की यह दशा न होती'। कदाचित यदि तू आ जावे तो मैं तुझको आज्ञा दूंगी कि इस अपराध के दन्ड में तू इक्कीस बार क्षत्रियों को समूल नष्ट करदे। ऋषियों ! विचार में बहुत बड़ी शक्ति है। यह बिजली से अधिक तेज, वायु से अधिक शीघ्रगामी और आंधी से अधिक तीव्र गति वाला है। रेनुका के विचार की धारें परशुराम के हृदय से टकराई। वह उसी दिन वापस आ गया। देखता क्या है कि मेरा सिर धड़ से अलग पड़ा है और रेनुका बुरी तरह से रो रही है। उसने सारा हाल पूछा। माँ से कहने लगा कि दुःखी न हो। मैं बाप को अभी संजीवनी शक्ति से जीवित करता हूँ। चूंकि तूने उसके शोक में इक्कीस बार छाती पीटी है, इक्कीस ही बार क्षत्रियों को निर्मूल कर दूंगा। परशुराम ने मुझे पुनर्जीवित किया और मुझ रेनुका को सौंप करके क्षत्रियों के पीछे बुरी तरह पड़ा। लाखों को कई बार मिटटी में मिला दिया। भागने से भी उन्हें छुटकारा नहीं मिला। जो सामने आया वह उसके फरसे से मौत के घाट उतारा गया। जो जान लेकर भागा वह तीरों का लक्ष्य बना। परशुराम ने क्षत्रियों को चुन-चुन कर मारा। एक भी क्षत्री राजवंश का संसार में नहीं छोड़ा। मुझको कहते हुये लज्जा आती है कि मैं ऐसा निरपराध और अहिंसक और मेरे कारण से संसार पर बार-बार ऐसी आपत्तियाँ आवें। कुछ कहा नहीं जाता संसार की गति विचित्र है। देश में अकाल पड़ गये। राज और काज सब भ्रष्ट हो गये। शासन का अन्त हो गया, प्रजा दुःखी हो गयी। परशुराम ने चाहा कि ब्राह्मणों को भूमि और राज्य प्रदान किया जाय।

उसने ऐसा प्रबन्ध भी किया, मगर इससे कुछ नहीं बना। यह मेरे जीवन की तीसरी घटना है। जो बड़ी रोमांचकारी और शिक्षाप्रद है। मैं इनको याद नहीं करना चाहता परन्तु आप लोगों की आज्ञा सर पर है। अब बतलाइये कि और भी अपने जीवन की घटनायें सुनाऊँ कि बस करूँ।

वशिष्ठ जी ने हंसकर कहा—यमदग्नि जी तुम्हारा वृतान्त मुझसे बहुत मिलता-जुलता है। हाँ, मैं क्षत्रिय कुल पालक हूँ, तुम क्षत्रिय कुल घालक हो, केवल इतना ही अन्तर है। अब यह बताइये कि सहस्रार्जुन, रेनुका, परशुराम और क्षत्रिय कुल के इक्कीस बार नाश करने से आपका क्या अभिप्राय है जिससे समाज के सारे मनुष्य असलियत को समझ जांय।

यमदग्नि बोले ! सहस्त्रार्जन मनुष्य का मन है, जिसके सहस्र हाथ और सहस्र ही बन्दिशें हैं। यह मन क्षण प्रति क्षण खेल खिलाता रहता है। कभी राज करता है, कभी अराधना करता है। कभी लोक सुधारना चाहता है और परलोक का ध्यान करता है। इसकी चाल निराली है। कभी समाधि लगाकर बैठा अभी आकाश पर चढ़ा और कभी समुद्र में डुबकी लगाई। इस मन को रेनुका की बहन ब्याही है। रेनुका आत्मवृत्ति को कहते हैं। जो यमदग्नि रूपी आत्मा के साथ रहती है। इससे जो रजोगुण से मिली हुई सत की धार निकलती है वही मन को जाकर जीवित करती है। यदि यह न हो तो मन से कोई काम नहीं हो सकता है। जब बुद्धि इसे शक्ति देती है तो मन काम करने लगता है। यदि रेनुका ने अपनी बहन को याद न किया होता तो क्यों सहस्रार्जुन आता और मेरी कामधेनु गाय को छीन ले जाता,

कामधेनु आत्मशक्ति है। यह मन के मान की नहीं है। मन हजार चित्त की वृत्ति रोक कर उसको वश में करना चाहे, किंतु उसका हाथ आना फिर भी कठिन है। आत्मा केवल उन्ही को मिलती हैं जो उसको प्यार करते हैं। साराँश यह है कि गलती रेनुका रूपी आत्मवृत्ति ने की जिसका यह दुष्परिणाम हुआ। कोई किसी पर विजयी नहीं हो सकता जब तक उसका सजातीय सहायता न करे। एक कथा तुमको सुनाता हूँ। किसी वन में बहुत बड़ा वृक्ष था। एक लकड़-हारे ने उसको देखा। कहने लगा इस पेड़ को गिरा दूँ। इसकी लकड़ी खूब बिकेगी। जितने पक्षी बैठे थे डर गये। और वृक्ष से उड़ना चाहा। वृक्ष ने कहा चिन्ता न करो। तुमको कोई उस समय तक हानि नहीं पहुँचा सकेगा, जबतक मेरे सजातीय उसका साथ नहीं देंगे। लकड़हारा प्रतिदिन आता था और इसी प्रकार की बात करता था। अन्त में एक दिन वह आया और वृक्ष की एक शाखा को हाथ लगाया। वह शाखा उसकी ओर झुक गई। तब वृक्ष ने पक्षियों से कहा अब तुम सब लोग यहाँ से उड़ जाओ। अब कुशल नहीं है। यह झुकी हुई मेरी शाखा लकड़हारे से मिल गई और वह सारे वृक्ष को गिरवा देगी। पक्षियों ने इस बात को नही समझा। आखिर लकड़हारे ने पेड़ की वह शाखा तोड़ ली उससे अपने कुल्हाड़े का बटा बनाया और उसी से सारे वृक्ष को काट कर गिरा दिया।

इसी प्रकार ऐ ऋषियों! जब आत्मा वृत्ति किसी प्रकार मन की ओर झुकती है तब उत्पात मच जाता है। यदि मन पर आत्मवृत्ति विजयी रहे और सिवाय आत्म दृश्य के कुछ न देखे तो कोई कष्ट न हो। परशुराम इसी आत्मवृत्ति का

राजसी वृत्ति वाला परम पुरुषार्थ रूपी पुत्र है। इसमें आत्म बल होता है जब यह मन की ओर झुकता है तो क्षण भर में सहस्रों हाथ वाले मन का अन्त कर देता है मन में इतनी शक्ति नहीं कि उसके सामने ठहर न सके। मगर आप जानते हैं कि यह मन शरीर का राजा है। इसको कभी मारना नहीं चाहिये। इसको केवल अपने वश में लाना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ आदि इसके सहस्रों पुत्र है। इनका भी मारना बड़ी भारी गलती है। अर्थ केवल इतना है कि इनका सुधार करके इनकी प्रवृत्ति आत्मा की ओर बदल दें। जो मन को मारते है वह अपराधी होते हैं। जब मन ही न रहा तो शरीर का राज्य नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार इसका प्रबन्ध नहीं हो सकता। ऐ, वशिष्ठ! आपके प्रश्न के एक भाग का उत्तर मैंने दे दिया। अब और सुनो —

मन को मृतक देखकर, मतमाने विश्वास।
साधु वहां लगि भय करें, जहां लग पिंजर श्वास॥
मैं जानूँ मन मर गया, मरकर वह हुआ भूत।
मूये पीछे उठ लगा, ऐसा मेरा पूत॥

मन रूपी सहसार्जुन मर गया मगर अभी उसकी सन्तान शेष बच गई थी। उसने उत्पात मचाना चाहा और यमदग्नि रूपी आत्मा पर आक्रमण करके उसका सिर काट दिया। सिर काटने से अभिप्राय यह है कि सब के सब मन, बुद्धि, अहंकार आदि आत्मा के विरोधी हो गये। और अपने आप नाच नाचने लगे। उस समय रेनुका रूपी आत्मा वृत्ति ने २१ बार छाती कूटी और परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों का नाश किया।

वशिष्ठ ने कहा, यह क्षत्री कौन है? और परशुराम ने

२१ ही बार क्यों इनका नाश किया ? २० या २४ बार क्यों नहीं नाश किया ? यमदग्नि बोले, मन के समस्त राजसी भावों का नाम क्षत्री है क्योंकि मन सतोगुण रूपी प्रकाश का स्वभाव रखता हुआ अपनी चित्त शक्ति के कारण से रजोगुणी है, इसलिये उनको क्षत्री कहा गया है। क्षत्री शब्द से यहाँ कोई अभिप्राय नही है। आपने यह प्रश्न किया है कि परशुराम ने २१ ही बार क्यों उनका नाश किया। इसका कारण यह है कि सूक्ष्म तत्व सात है। ...बुद्धि, अहंकार, और पंच तन मात्रा। यह सात मन की जड़ है इसकी जड़ इनमें हैं। इन सातों में से हर एक सत, रज व तम् के सम्बन्ध से मन तीन रूपों वाला है। अगर तीन को सात से गुणा कर दे तो २१ होते हैं। अतएव यह कहा गया है कि परशुराम ने इक्कीस बार इनकी जड़ खोदी है।

इतना कह कर यमदग्नि चुप हो गये। उनके मुख से ज्ञात होता था कि अब वह कुछ नहीं कहना चाहते मगर वशिष्ठ ने कहा कि महाराज ! अभी एक बात और रह गई है। गंगा क्या है ? जल क्या है ? चित्रकेतु गन्धर्व की जल क्रीड़ा से क्या प्रयोजन है और रेनुका के सिर काटने से आप का क्या मन्तव्य है ? आपने अभी बताया है कि रेनुका आत्म वृत्ति का नाम है। कोई ज्ञानी इस बात को नहीं पसन्द करेगा कि आत्मवृत्ति अथवा आत्माकार वृत्ति का सिर काटा जाय।

यमदग्नि ने उत्तर दिया। आत्मा वृत्ति और वस्तु है। आत्मा और वस्तु है। इसको आप ध्यान में रखें। सृष्टि पुरुष व प्रकृति के खेल का तमाशा है। इस मेल में जो क्षोभ होता है उसी को वृत्ति बोलते हैं। गंगा सृष्टि के प्रवाह की

धारें इसमें जल रूप हैं चित्रकेतु और गन्धर्व वह नाना प्रकार के संस्कारों के नक्शे हैं जो मन व बुद्धि में खिचे हुये पड़े रहते है। जिस समय आत्म वृत्ति सृष्टि के प्रवाह का तमाशा देखने लगी, संयोगवश काम, भावना, जिसके नक्शे मस्तिष्क में खिचे हुये थे, फुरने लगे और वह उस ओर आकर्षित हो गई। आत्म वृत्ति को इन सब बातों से क्या काम है। इस लिये परशुराम के फरसे ने उसका सिर काट दिया। सिर काटने का अर्थ केवल वृत्ति के पलटने से है और कुछ नहीं।

जब यमदग्नि ऋषि यहां तक पहुँचे उनको इच्छा हुई कि वह अपनी एक एक बात को साफ-साफ प्रगट कर दें परन्तु वशिष्ठ ने कहा कि इसकी बिलकुल आवश्यकता नहीं। इस मण्डली में अध्यात्म बातों के समझने वाले सब लोग हैं। वह इन अलंकारों को समझ सकते हैं। अब अत्रेय ऋषि को अपनी कथा सुनाने दीजिये।

सतसंग हुजूर
परमदयाल जी
महाराज
मानव मन्दिर,
होशियारपुर।
(दिनांक ५ अगस्त, १९७३)

(गतांक से आगे)

जो भेद मुझे प्राप्त हुआ मैं अपने प्रण अनुसार तथा हुजूर दाता दयाल की आज्ञानुसार कि शिक्षा को बदल जाना, कहता हूँ कि ब्रह्म प्रकाश, तेज अथवा सावित्री है। इसी सूत्र में लिखा हुआ है कि जिज्ञासा करता हुआ जीव जब ऊपर जाता है तो उसको वहाँ ब्रह्म की प्राप्ति होती है। परन्तु वहाँ वह पहुंच सकता है जिसका चरित्र ठीक हो। जिस में घृणा, द्वेष, चार सौ बीस, स्वार्थपरता तथा हेरा-फेरी न हो अन्यथा वह किसी भाँति भी ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकता। फिर वह लिखते हैं कि ब्रह्म रचना करता है। साइन्स (विज्ञान) भी कहती है कि रचना गर्मी और प्रकाश से होती है। तो फिर रचना करने वाला प्रकाश है। जो कोई रचना करने वाले प्रकाश को देखता है, वह ब्रह्म का जिज्ञासु हैं। इसी सूत्र में आगे चलकर यह भी लिखा है कि ब्रह्म का जो आधार है वह भी ब्रह्म है। शास्त्रों ने इसको सावित्री अथवा प्रकाश कह दिया। यह जो रचना करता है इसका भी कोई आधार है जो इससे बहुत परे है तथा वही हमारा

आदि मालिक कुल है। हम उसके अंश हैं। इस ब्रह्म अथवा प्रकाश का सम्बन्ध तो हमारे शरीर मन तथा आत्मा से है। अतः मैं यह कहता हूं कि वह मालिक के कुल सर्व स्वामी यहां नहीं रहता। उसके अंश अथवा किरणें यहां रहती हैं।

यदि कोई अपने घर जाना चाहता है तो उसको सबसे पहले यह ज्ञान होना चाहिये कि उसके मन में जो भी विचार भाव, कल्पनायें तथा रूप रंग प्रगट होते हैं, यह सब माया हैं तथा उसके अन्तर जो राम, कृष्ण देवी, देवता किसी गुरु अथवा महात्मा का रूप प्रगट होता है। यह सब उसके मन का अथवा अपने विश्वास के अनुसार बनाया हुआ है और यह काल्पत है तथा माया का चक्कर है। ब्रह्म है प्रकाश और तेज। जो मनुष्य अपने अन्तर प्रकाश को देखता है। वह ब्रह्म को देखता है। यदि तैतिरीय ऋषि की वाणी को सत्य माना जाये तो वह जो ब्रह्म है वह विज्ञानमय कोष की पूंछ है। तो फिर लक्ष्य और इष्ट क्या हैं? प्रकाश का साधन करने से हर्ष, सन्तोष, आनन्द और मस्ती प्राप्त होती है। यदि संसार मौखिक रूप से प्रकाश प्रकाश अथवा ब्रह्म ब्रह्म की रट लगाता रहे तो क्या लाभ? प्रकाश में प्रवेश कर के अपने अस्तित्व की मस्ती, हर्ष तथा आनन्द में ही आना ही भेद है। अपने आप को आनन्दमय, हर्षमय मस्तीमय, अचिन्त तथा शोक रहित बनाना ही हमारा लक्ष्य व उददेश्य है। अतः किसी व्यक्ति को प्रकाश नहीं आता तो क्या हानि है। प्रकाश देखने के बाद भी तो मनुष्य को निश्चिन्तता, हर्ष तथा मस्ती ही आती है। यदि उसको ऐसे ही वह वस्तुयें प्राप्त हो जायें तो फिर उसको प्रकाश देखने की चिन्ता कर

ने की आवश्यकता ही क्या है। यदि गुरु पूर्ण है तथा चेला भी पूरा आज्ञाकारी और विश्वासी है तो फिर अभ्यास की भी आवश्यकता नही है। यह है गुरु भक्ति। अत: तेतिरीय ऋषि ने नितान्त सच कहा है कि ब्रह्म विज्ञानमय कोष को पूंछ है। जब ब्रह्म है ही पूंछ अर्थात निचला भाग तो उससे मिलता क्या है? आनन्द, सन्तोष तथा मस्ती। मैंने विज्ञान मय कोष में जाके यह प्रसन्नता तथा मस्ती ली हुई है। गुरु भेद देता है। जो अधिकार पूर्ण मस्तिष्क वाले हैं उनके लिये यह कठिन नहीं है। स्वामी जी महाराज ने अपनी वाणी में एक जगह लिखा है—

गुरु मिले तब क्या कमाना।

यदि पूर्ण गुरु प्राप्त हो जाये तो फिर कमाई कैसी? जो व्यक्ति अचिन्त्य तथा शोक रहित रहता है वह विज्ञानमय कोष में रहता है तो एक तो यह भेद है। दूसरा भेद जिसको प्रत्येक व्यक्ति समझ नहीं सकता वह यह है कि सतचित आनन्द का सम्बन्ध हमारे शरीर मन और आत्मा से है, अत: इससे परे भी कोई वस्तु है जो सच्चिदानन्द का आधार है। समस्त जीवन उसी की खोज में व्यतीत हो गया। जब से मुझे आप लोगों ने बताया कि मेरा रूप आप लोगों के अन्तर प्रगट होता है तथा किसी को औषधि बता जाता है, किसी को पुत्र प्रदान करता है। और किसी को किसी कठिनाई से निकालता है, किंतु मैं नहीं होता और नहीं मुझे इन घटनाओं का ज्ञान ही होता है, तो मुझे विश्वास हो गया कि मेरे अन्तर भी जो रूप, रंग इत्यादि प्रगट होते हैं यह कल्पित है तथा माया है। तो फिर इनसे आगे जा कर उस मालिक की खोज

करने के लिये विवश होना पड़ा। आगे है प्रकाश तथा शब्द मैं इनमें जाता रहता हूँ, वहाँ उस वस्तु की खोज करता रहता हूँ, जो प्रकाश में रहती हुई प्रकाश को देखती हैं तथा शब्द में रहती हुई शब्द को सुनती है। वह वस्तु क्या है? वह मैं हूं अथवा तुम हो। वह उस मालिक के कुल का अंश हैं। अतः मैंने यदि यह कहा कि वह मालिक यहां नहीं रहता है तो क्या झूँठ कहा है? परन्तु वहाँ तक वह जा सकेगा जिसको पहले सतचित आनन्द का अनुभव हो गया है तथा वह इससे आगे जाना चाहता है। यह सन्तों का मार्ग है, यह भेद गुरु से प्राप्त होता है। मुझे सत्य की खोज थीं, हुजूर दाता दयाल जी ने मुझसे खेल खेलाया तथा मुझे यह गुरु पदवी दी जिससे कि मुझे वास्तविकता की समझ आ जाये। वह गुरुआई मुझे इसलिये नहीं दी थी कि मैं आपसे मत्थे टेकता रहूँ और आपकी आँखों में मिटटी डालकर आप को लूटता रहूँ। धरमदास जी ने भी यहीं बात कहीं —

हमें गुरु मिल गये बन्दी छोड़।

अब मैं यदि यह कहूँ कि मुझे हुजूर दाता दयाल जी महाराज बन्दी छोड़ गुरु मिल गये उन्होंने मेरे क्या बन्द छुड़ाये? मेरे अन्तर जो 'मैं' है जो शरीर में आकर अपने आपकों शरीर समझती है, मन में आकर अपने आपको मन समझती है। मन प्रकाश में आकर प्रकाश तथा शब्द में आ कर अपने आपको शब्द समझती है, वह उस भ्रम से निकल गई तथा उसको अपने आप का ज्ञान हो गया। आप लोग मुझे बन्दी छोड़ गुरु मिले हैं जिन्होंने मुझे यह बताया कि मेरा रूप आपके अन्तर प्रगट होता है। किंतु मैं नहीं होता तो

...ा अवसर प्राप्त हुआ। मैं एक सत्य प्रिय मानव हूं यदि मुझे अपनी मान-प्रतिष्ठा की आवश्यकता होती है तो मैं भी पर्दा रखता और मैं आज करोड़ों का मालिक होता और यह मन्दिर भी आज एक अत्यन्त विशाल डेरा होता। परन्तु मेरी आत्मा मुझे आज्ञा नहीं देती, न मैं ने इसको पसन्द ही किया है। हुजूर दाता दयाल जी महा-राज का यह आदेश था कि शिक्षा में सुधार कर जाना। मैं ने जो समझा वह कहा, पता नहीं इस रहस्य को खोल कर भला किया अथवा बुरा किया है।—

हमें गुरु मिल गये, बन्दी छोड़।
सतगुरु मिले भरम सब भागे॥
विषय इन्द्री चित चोर।
मलयागिरि सर्पन ने त्यागा,
जब चढ़ बोले मोर॥

पहले तो मैं भी मन में फंसा हुआ था। हुजूर दाता ल जी महाराज के रूप को अपने अन्तर में सत्य मानता ज्ञान, विचार, पाप और पुण्य के जो भाव मेरे अन्तर ाते थे मैं उनको सत्य मानता था। जब से मुझे यह पता कि मेरा रूप लोगों के अन्तर में प्रगट होता है तथा मैं होता तो फिर मैंने आगे जाने का प्रयास किया और ा तथा शब्द में पहुंच गया। वह मैं उसकी खोज करता हूँ। जो सचमुच मेरा आधार है। जब मानव अपने में प्रकाश तथा शब्द में जायेगा तभी तो उसको यह का अवसर प्राप्त होगा कि अन्तर में प्रकाश को कौन है तथा शब्द को कौन सुनता है।

सात सुन्न ते सुरत उतर गयी,
चौदह तबक गयी फोर

जब सुरत ज्ञान इन्द्रियों, कर्म इन्द्रियों, बुद्धि और आत्मा बोद्ध भान छोड़ जाती है तो इसका नाम सुरत का सात सुन्न से उतर जाना। पांच कर्म इन्द्रियां, पांच ज्ञान इन्द्रियां मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार इसके प्रभावों में न आना चौदह लोक से परे जाना है। यह मेरी समझ में आया है।

करमन का गुरु फन्दा काटे,
पकड़े पांचों चोर॥

हुजूर दाता दयाल जी महाराज ने तथा आप लोगों ने मेरा फन्दा काटा। मैं सत्य का खोजी था, सन्त मत मेरे लिये नई वस्तु थी। मैं भ्रम में आया हुआ था। मैं देखना चाहता था कि सन्तों के पास क्या नई वस्तु है। अब समझ आई है कि कबीर साहब ने अथवा अन्य सन्तों ने जो कुछ कहा है वह परम सत्य है।

लोक कुटुम्ब की आशा त्यागी,
तजो वेद को छोर।

जब मानव को अपना आपा प्राप्त हो जायेगा तथा अपना असली घर ज्ञात हो जायेगा तो उसके मन के तमाम खेल स्वयं ही समाप्त हो जायेंगे। मैं कौन हूँ अथवा मेरा घर कहाँ है? मै वह वस्तु हूँ जो शरीर में रहती हुई प्रकाश को देखती है तथा शब्द को सुनती है वह है अकह, अपार, अगाध तथा अनाम। मेरा ही नहीं सबका वही एक है, न हम ब्रह्म बनते हैं न हम खुदा बनते हैं, न हम प्रकाश बनते हैं तथा न हम शब्द बनते हैं। हमारी अवस्था इन सबसे परे

की है। किंतु वहां जा कर अभी ठहरना कठिन हो रहा है। प्रयास करता रहता हूँ, परन्तु गिरता रहता हूँ। यह सत्संग कराना भी तो मेरा गिरना ही है।

तेरो रूप तू ही में दरसे,
घट गयो तन को जोर।

अपने रूप का तो मुझे पता लग गया, वहाँ जाता रहता हूं पर वहां ठहरा नहीं जाता। क्योंकि उसकी कोई थाह नहीं मिलती है, इसलिये यहां आ कर सब करना धरना समाप्त हो गया। यह समझ आई कि यहां कोई भी वस्तु अथवा कोई भी कार्य अपने वश में नहीं है। यह सारी सृष्टि किसी शक्ति के आश्रित है जो उसकी इच्छा होती है वही होता है जो कुछ यहां हो रहा है, यह उसी शक्ति के आश्रित हो रहा है, किसी सन्त या परम सन्त अथवा महात्मा का उसके काम में कोई अधिकार नहीं है। और नहीं उसका किसी को कोई अन्त ही मिला है। इस ज्ञान से मुझे शान्ति प्राप्त हुई है। जब हमारे वश में कुछ है ही नहीं तो फिर हम हाय हाय क्यों करें। जो उसकी मौज है वह स्वय ही होता रहेगा। उस अवस्था में रहने का नाम जीवन मुक्त अवस्था है। मुझ इस अनुभव से शांति मिली, औरों को मिले अथवा न मिले मुझ पता नहीं।

यह जो मैं कार्य करता हूँ, यह किसी विशेष उददेश्य से है तथा यह वह है कि प्रत्येक मानव अपने इष्ट की टेक रख कर या तो दूसरों का खण्डन करता है और या यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि जो कुछ दूसरे कहते हैं वही उसका इष्ट भी कहता है। हिंदू ऋषि अत्यन्त समझदार थे, कपिल ऋषि जो नास्तिक थे, उन्होंने उसको अवतार माना

है। क्यों ? केवल इसलिये कि उनकी एकता बनी रहे। तैत्तिरीय ऋषि ने लिखा है कि ब्रह्म विज्ञानमय कोष की पूंछ है। प्रसन्नता उसका सिर है। सन्तोष दांया कन्धा तथा मस्ती बाँया कन्धा है। परन्तु ब्रह्म सूत्रों के टीकाकारों ने दूसरी पुस्तकों का प्रमाण देते हुये लिखा है कि प्रसन्नता भी ब्रह्म है। सन्तोष तथा मस्ती भी ब्रह्म है।

व्यवहारिक जीवन कुछ और है मुझे जो शिक्षा मिली है वह साधन सम्पन्नता की है। मैंने प्रकाश से ऊपर भी बहुत कुछ अवस्थाओं का अनुभव किया है, उनके ऊपर नाम है। हिंदू शास्त्रों ने ब्रह्म को चार रूपों में विभाजित किया है। सबल ब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म. पारब्रह्म तथा शब्द ब्रह्म। मेरे विचार में विद्वान लोग शब्दों में अड़ जाते हैं। तथा वाद-विवाद प्रारम्भ हो जाता है। आप देखो कि हिन्दूओं के एक दल ने बौद्ध भिक्षुओं पर बड़े-बड़े अत्याचार किये। उनको लूटा, उनको मारा, उनको जलाया तथा भारत से बाहर भगा दिया। क्यों ? हिंदू ईश्वर का अथवा आत्मा का इष्ट रखते हैं। बद्ध धर्म में ईश्वर, आत्मा का वर्णन नहीं है। अतः गलत टेक के कारण यह उपद्रव हुये। हम पन्थाई भी अपने गुरु की टेक रखते हैं। किसी के गुरु को कोई कष्ट आया तो क्योंकि उनकी टेक है अतः जो कर्म उस गुरु ने भोगा उसको वह सुन नहीं सकते थे। अतः उन्होंने कह दिया कि उनके गुरु ने अन्य व्यक्तियों के पाप लिये हुये हैं। ऐसी बातें सुनने में आती हैं।

मुझ किसी बात का कोई दावा तो है ही नहीं परन्तु मैंने अपना समस्त जीवन निस्वार्थता और निष्कपटता से सत्य तथा हकीकत को जानने के लिये व्यतीत किया है। टेक मुझे

भी है किंतु वह टेक हुजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज की नहीं है। वह सतगुरु की टेक है। सतगुरु नाम है सच्चे ज्ञान का। क्योंकि मुझे हुजूर दाता दयाल जी महाराज की आज्ञा थी, मेरा प्रण था और मेरा कर्म था, हुजूर बाबा सावन सिंह महाराज ने मुझें प्रोत्साहन दिया। अतः मैंने अपनी शुद्ध भावना से वह कार्य किया है, जिससे जीवों के भ्रम तथा शंकायें दूर हों, साथ ही साधन सम्पन्न जीवन में रहते हुये अपने लोक व परलोक को सुधारने के लिये यह काम किया है। अब तो कुछ समय के अनुसार कुछ परिवर्तन हो रहा है। अब ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसमें घरेलू एकता, धार्मिक एकता, सामाजिक एकता, राजनैतिक एकता और राष्ट्रीय एकता हो। मुझे शोक है कि मैं संस्कृत नहीं जानता। यह भी मैंने जो ब्रह्मसूत्र के प्रमाण दिये हैं, यह मुझे अन्य विद्वानों ने अर्थ समझाया है, तब मैंने कहा है।

मैं आशा करता हूँ कि वर्तमान धार्मिक तथा पन्थिक दिग्दर्शक, आचार्य, पोलिटिकल और सामाजिक नेता अपने मान, अपनी गददी, अपने धर्म तथा अपने पन्थ की टेक छोड़कर मानवता के नियमों पर कार्य करें।

यदि कोई यह समझता है कि मैं भूल पर हूँ तो मुझको बूढ़ा समझ कर क्षमा कर दें। सम्भव है कि मैं भूल पर हूँ किंतु मेरे हृदय में शुद्धि है।

सन्तो मूल भेद कुछ न्यारा।
कोई विरला जानन हारा॥
बिन गुरु भक्ति भेद नहि पावे।
भरम भरे संसारा॥

मैंने अपना समस्त जीवन खोज में व्यतीत किया जो मूल भेद प्राप्त हुआ उससे मुझे शांती मिली। वह मूल भेद क्या है ? सबका एक ही मालिक है। जो उसकी मौज है वह होता है। मानव के हाथ में कुछ नहीं है। इससे मुझे शांती मिली। श्री कन्हैया लाल मानिक लाल मुन्शी जो कि एक बहुत बड़े विद्वान तथा राजनैतिक नेता थे और राज्य-पाल भी रहे हैं। उन्होंने एक पुस्तक लिखी है जिसके तेरह अध्याय हैं। प्रथम बारह अध्यायों में उन्होंने लिखा है कि मानव अपने साहस से यह कर सकता है वह कर सकता है। उसमें उन्होंने लिखा है कि व्यक्ति जो चाहे कर सकता है। किंतु तेरहवें अध्याय में लिखते हैं कि पूर्व के बारह अध्यायों में मैंने जो कुछ लिखा है वह सब गलत है तथा जो कुछ मैंने इस अध्याय में लिखा है यह शत-प्रतिशत ठीक है। इसमें वह लिखते हैं कि मैं एक अत्यन्त गरीब परिवार में पैदा हुआ पिता का देहान्त बचपन में ही हो गया। मेरी माता अत्यन्त गरीब थी, मैं अस्वस्थ हो गया। माता जी बहुत दुःखी हुई। उन्होंने मेरा टेवा किसी ज्योतिषी को दिखाया। उसने कहा कि आप चिंता मत करो, बच्चा आरोग्य हो जायेगा। यह बहुत पढ़ेगा और एक दिन राज्यपाल बनेगा।

मैं स्वस्थ हो गया, स्कूल जाने लगा। माता जी के लिये शिक्षा का व्यय सहन करना दुष्कर था लेकिन प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध किया कि मुझे श्रेष्ठ मस्तिष्क प्रदान किया। मैं शुरु से अन्त तक छात्रवृत्ति ग्रहण करता रहा। उच्चत्तर शिक्षा प्राप्त की। समय आने पर राज्यपाल भी बना। अतः मानव के हाथ में कुछ नहीं है। प्रकृति ने जिसको जैसा बनाना होता है वैसा ही बना देती है। ये सब उसकी मौज पर है।

अब मैं उस अवस्था में रहने का प्रयास करता रहता हूँ,

परन्तु सदा के लिये नहीं रह सकता। वहां रहने की इच्छा है अथवा वहां रहने का प्रयास है यह भी तो एक भ्रम ही है। अब क्या है? जैसे बीततो है बीतती है। यदि इच्छा होती है तो भजन करता हूँ अन्यथा नहीं। इससे हर्ष प्राप्त होता है, चिंता रहित अवस्था है। आप एक छोटे बच्चे को देखो, क्या वह भजन करता है? उसके सम्मुख कोई सुन्दर वस्तु ले जाओ वह उसे देखकर प्रसन्न होगा। वह यदि उस वस्तु को छोड़ देगा फिर भी वह हर्षित है। अन्तिम आयु यह अवस्था होती है, जो व्यक्ति इस अवस्था में रहता है उसको फिर भजन करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

परन्तु यह सन्तों की अवस्था है। संसार वालों को क्या करना चाहिये। "शिव संकल्पस्तु" वेद मार्ग पर चलो, अपने विचारों को शुद्ध रखो, किसी का बुरा मत सोचो। सबका भला चाहो, किसी दुःखी की सहायता करो। किसी दीन गरीब की सहायता करो। इससे तुम्हारा जीवन सुख पूर्वक व्यतीत हो जायेगा। शेष रह गया अपने आदि घर पहुँचना अथवा मालिक से मिलना, यह किसी किसी के भाग में आता है। सर्वोपरि मालिक तो यहां नहीं रहता वह तो अति ऊँचा हैं। उसको तो तब मिल सकोगे जब तुम उतनी ऊँचाई पर पहुँच जाओगे जब सांसारिक वासनाओ को छोड़ दोगे तथा वहाँ पहुँचने की तीव्र इच्छा रखोगे। चूँकि सर्वोपरि मालिक की किरणें यहाँ सब में व्यापक हैं। अतः जब तक तुम में सांसारिक इच्छाये हैं उस समय तक उस सर्वोपरि मालिक की सेवा, पूजा तथा उससे तुम्हारा प्रेम यही है कि मानव, मानव की सेवा करे तथा निष्काम सेवा करे। उस विधि तुम्हारी प्रवृति भी बन जायेगी तथा निवृत्ति के भी अधिक बनते जाओगे।

सबको राधास्वामी

—०—

इन्द्रिय भोगो की मर्यादा

मन की पाँच इन्द्रियाँ संसार के समस्त आकर्षण और रस का कारण हैं। जब तक हमारे नेत्र सुन्दर सांसारिक वस्तुओं का दृश्य देखते हैं, जिव्हा खाद्य-पदार्थों का रस लेती है। नासिका भिन्न-भिन्न गन्धों का आनन्द उठाती है। कान श्रवण सुखद स्वरों पर विमुग्ध होते हैं तथा त्वचा से तापक्रम इत्यादि का बोध होता है तभी तक हमारे लिये संसार का क्रम है, तभी तक उसमें आकर्षण है।

इन्द्रिय-भोगों से मनुष्य को सांसारिक आनन्द की प्राप्ति होती है। वह नाना रूप में संसार की विभिन्न वस्तुओं का रसपान करता है। इन्द्रिय भोगों के कारण उनकी शक्तियों का विकास होता है। वह जीवन में अधिक से अधिक आनन्द लूटना चाहता है।

अधिक से अधिक आनन्द लूटने की कामना से वह अपनी पाँचों इन्द्रियों से अधिक से अधिक आनन्द प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अच्छे से अच्छे पदार्थ खाता है, उत्तमोत्तम सुगन्धित पदार्थ सूँघता है, नेत्रों से सुन्दरतम दृश्य देखता है, कानों से मधुरतम संगीत सुनता है और बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहनता है। इन सब वस्तुओं के प्राप्त हो जाने पर उसे ज्ञात होता है कि अभी कुछ और चाहिये। वह और वेग से इन्द्रिय भोगों की ओर दौड़ता है। पर सब व्यर्थ! अतृप्ति और कुछ पाने की इच्छा उसके मन में निरन्तर बनी रहती है। इसका कारण यह है कि इन्द्रिय भोगों की एक मर्यादा है इस मर्यादा से बाहर वह कुछ आनन्द नहीं दे सकती।

जब तक मनुष्य इन्द्रियों के माया जाल में बंधा हुआ है, तब तक वह अंधेरे में भटकता रहेगा। उसके पास सब कुछ सांसारिक पदार्थ होकर भी कुछ नहीं रहेगा। वह जितना इनसे सुख प्राप्त करने की कामना करेगा, उतना ही उसका सुख आगे बढ़ता जायेगा। खेद का विषय है कि अधिकांश व्यक्ति जीवन के इसी पाशविक स्तर पर निवास करते हैं। वासना के निम्न स्तर से न ऊँचा उठने का प्रयत्न करते हैं, न इस अन्धकार की चेतना ही उनके मन में होती है। उनका परिवार बढ़ता जाता हैं, आवश्यकतायें निरन्तर अभिवृद्धि को प्राप्त होती चलती है, दुःख भी बढ़ता रहता है।

कविवर रहीम ने एक बड़ा महत्वपूर्ण दोहा लिखा है—

बड़े पेट के भरन में, हैं रहीम दुख बाढ़ि।
या ते हाथी हहरिकै, दिये दाँत द्वै काढ़ि।।

अर्थात बड़े पेट को भरने में बड़े कष्टों का सामना करना पड़ता है इसी से बड़े पेट वाले हाथी ने घबड़ाकर दो दांत बाहर निकाल दिये है।

वास्तव में बड़े पेट वाले की बड़ी मुसीबत है। आधुनिक काल में वही दुःखी और अतृप्त है। जिसका बड़ा पेट है। अर्थात जिसके अभाव तथा आवश्यकतायें बढ़ी हुई हैं।

बड़े पेट का अर्थ अधिक व्यापक है। उसमें आपकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं का समावेश है। बड़े पेट से तात्पर्य केवल उदर सम्बन्धी क्षुधा नहीं है वरन उनका अर्थ मनुष्य की सभी आवश्यकतायें सामूहिक रूप से है। जितनी आवश्यकतायें, उतना ही कम सुख, शान्ति और समृद्धि। यही आध्यात्म का नियम है।

मान लीजिये, आप एक साधारण से कच्चे मकान में

रहते हैं। आपके मन में दर्प और अपने महत्व के प्रदर्शन की भावना उद्दीप्त हुई और आपने कहा, 'हमें बड़ा पक्का' आली शान मकान मिलना चाहिये, हम इससे ऊँची हैसियत के हैं। हमें समाज में ऊँचा होकर रहना हैं। आपके मन में एक कृत्रिम आवश्यकताओं की उत्पति हो जाती हैं। आप उस पूर्ति के लिये योजनायें बनाते हैं। जमीन खरीदने के लिये इधर उधर भागे फिरते हैं, रुपया पास में नहीं होता तो किसी से उधार लेकर मकान के निर्माण में लगाते हैं। जब वह बन जाता है तो सारे दिन धूप-बरसात-ठण्ड में खड़े होकर उस की बनावट को देखते हैं। अब बन जाता है तो उसमें रहने लगते हैं। अब अच्छे मकान का सा सामाजिक रहन-सहन, फरनीचर, कपड़े, गाड़ी मोटर और न जाने कितनी आवश्यकताओं के बोझ आपके मनोजगत में उदित हो उठते हैं। कहाँ आप एक की पूर्ति करने निकले थे, कहाँ उसके स्थान पर दस-बीस नवीन कृत्रिम आवश्यकतायें मुँह फैलाये आपके सम्मुख आ खड़ी होती हैं। फिर आप उनमें से प्रत्येक की पूर्ति के निमित्त निकलते हैं। नाना प्रकार के झूंठ-फरेब, असत्य भाषण या अत्यधिक परिश्रम से उन्हें पूर्ण करने का प्रयत्न करते हैं।

शरीर की आवश्यकताओं में वासना सबसे अनर्थकारी आवश्यकता है। काम वासना के आवेश में मनुष्य हित-अनहित का विवेक न रखकर अनियन्त्रित होता है। सन्तान वृद्धि होते ही उसकी परिवार वृद्धि होती हैं। आधुनिक युग में परिवार वृद्धि अनेक प्रकार की चिंताओं तथा उत्तरदायित्व का कारण हैं। जिस व्यक्ति के आठ-सात सन्तानें हैं वह उन्हें खिलावे-पिलाने तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में आत्म सुधार या सुख आनन्द विस्मृत कर बैठता हैं। उसे अपने तन

बदन की सुधि नहीं रहती, उसके लिये तो कुटुम्ब का पालन-पोषण ही एक मात्र जीवन का उद्देश्य रह जाता है, स्त्रियों का जीवन प्रायः सन्तान के पालन-पोषण में ही समाप्त हो जाता है, न केवल गरीबी बढ़ती है, प्रस्तुत भुखमरी और आयुनाश भी होता है। स्वास्थ हानि से मनुष्य की किसी प्रकार से उन्नति नहीं हो पाती। वासना का नियन्त्रण आवश्यक है। इसकी पूर्ति सम्भव नहीं है। अतः जब वासनाये प्रबल होती प्रतीत हों तो विवेक द्वारा इनका शमन करना चाहिये। मन को समझाइये और व्यर्थ के मोहजाल से बचने के लिये प्रेरित कीजिये। ययाति यद्यपि बूढ़े हो गये थे। उन्हों ने अपने पुत्र से जवानी लेकर हजार वर्षों तक विषय भोग किया, किंतु उन्हें इन्द्रियों के भोगों में सुख प्राप्त न हुआ। अन्त में अत्यन्त ग्लानि से उन्होंने कहा —

इन्द्रिय के सुखों के उपभोग में शाँती नहीं होती यहीं नहीं बल्कि भोगों से तो वासना और बढ़ती है। जैसे जलती हुई अग्नि में उसे शान्त करने के लिये और घी डालें तो वह और बढ़ती है।

स्वादु भोजन, मीठी गन्ध, वासना पूर्ति अथवा बहुत से नध से सुख प्राप्त नही होता। यह तो केवल सुखाभास है। जितनी साँसारिक सामग्री बढ़ती जाती है, उतना ही अभाव लालच, वासना, इच्छाये और आवश्यकताये प्रदीप्त होती जाती हैं। संसारी वैभव से आज तक कोई तृप्त नहीं हुआ है। महाराज ययाति ने कहा है—

पृथ्वी पर जितना अन्न है, स्वर्ण आदि धातुयें हैं, जितने पशु हैं जितनी स्त्रियाँ हैं, ये सब भोग और वासना पूर्ति के लिये दे दी जांय तो भी तृप्त नहीं कर सकती। एक भी

व्यक्ति को आन्तरिक शांती प्रदान नहीं कर सकती। अतः हमें इनका पीछा छोड़कर भगवत् शरण में जाना चाहिये।

महात्मा बुद्ध ने कहा है, 'जहाँ पर वासना है, वहाँ सत्य शान्ती एवं सुख नहीं रह सकता।' गेटे नामक महाकवि कहा करते थे, 'अगर अपने अन्दर खोज करोगे, तो तुम्हें सब चीजें वहाँ मिल जायेंगी।' वास्तव में मन के बाहर की नाना वस्तुओं में स्थायी सुख और आनन्द की प्राप्ती नहीं हो सकती। सुख, तृप्ति, सन्तोष का एक मात्र केन्द्र मनुष्य का अन्तःकरण ही है। जो अपनी वासनाओं के परिष्कार द्वारा उन्हें निम्न घृणित मार्गों से बचाकर उच्च पवित्र मार्गो द्वारा प्रकाशित करता है, वही वास्तविक सुख का अनुभव करता है।

आवश्यकता इस बात की है कि हम वासना को कलात्मक रीतियों में उच्च मार्गों में प्रकाशित करते रहें। भजन, कीर्तन भगवन्नाम-उच्चारण, सँगीत, साहित्य, कविता, चित्रकारी, वादन, नृत्य आदि अनेक सांस्कृतिक रूपों में मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। भगवत्-भक्ति व साधन है, जो सहज ही मुक्ति प्रदान कर देती है। कवि ने सत्य ही कहा है—

हरि का मन से गुन गान करो,
तुम और गुमान करो, न करो,।
स्वर गंगा का जल पान करो।
तुम अन्य विधान करो, न करो।।
निसिवासर ईश्वर ध्यान करो।
तुम और का ध्यान करो, न करो।।
प्रिय नाह की बाँह का ध्यान करो।
तुम और विधान करो, न करो।।

—•—

नव वर्ष की शुभकामनायें

हम अपने ग्राहक भाई-बहनों को नव वर्ष की शुभकामनायें, इस आशय के साथ देते हैं कि यह वर्ष सभी भाई-बहनों को सुख, समृद्धशाली और खुशहाली देने वाला हो, व गुरु महाराज जी का आशीर्वाद बना रहे।

व्यवस्थापक

सूचना

पोस्ट आफिस के द्वारा डाक व्यय १५ पैसे के स्थान पर ५० पैसे कर दिया गया है। अतः हमें मजबूर होकर पत्रिका का वार्षिक मूल्य अब २५/- रु० (पच्चीस) रु० से बढ़ाकर ३० [तीस] रु० करना पड़ रहा है। हमारा ग्राहक बन्धुओं से निवेदन है कि आगे से वे पत्रिका का वार्षिक शुल्क ३०/- ही भेजें। ताकि हमें पत्रिका के प्रकाशन में कठिनाई न हो।

धन्यवाद !

—सम्पादक

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १५ नव०, १९८०

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

d. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

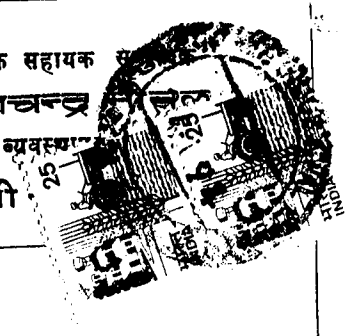

अवैतनिक सहायक स...
महेशचन्द्र ...
सम्पादक, व्यवस्था...
श्रीमती

BOOK-POST

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान् Sri Chilwar Narsimhlu
Hanmandlu General Store,
V&PO. Banswada mandal
Nizamabad AP
503187